औपचारिक संगठनों के माध्यम से शिक्षा

अमन मदान

"

औपचारिक संगठन के रूप में विकसित होने के बाद ही स्कूल की पहुंच आमजन तक हो पाई है। औपचारिक संगठनों की कुछ खासियतें हैं तो कुछ खामियां भी। निरंतरता और जड़ता इसके दो पहलू हैं। यह लेख औपचारिक संगठन के रूप में स्कूल के विकास को समझने का प्रयास करता है।

"

लेखक परिचय

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से एमफिल एवं पीएचडी करने के बाद एकलव्य, होशंगाबाद के साथ लगभग 3 वर्ष तक कार्य किया। इसके उपरान्त आईआईटी, कानपुर में समाजशास्त्र का अध्यापन किया। वर्तमान में अजीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी, बैंगलोर में समाजशास्त्र के प्रोफेसर हैं।

आलेखों की यह श्रृंखला समाजशास्त्रीय दृष्टि से कुछ मुख्य सामाजिक प्रक्रियाओं को जांचती है, जो आज भारत में शिक्षा के लिए केंद्रीय बन चुकी हैं। उन्हें बुनियादी प्रक्रियाएं कहा जाता है क्योंकि माना यह जाता है कि वे हमारे मौजूदा समय को दूरगामी अर्थों में आकार देती हैं। पिछले अंकों में सरल से जटिल समाजों की दिशा में बढ़ने के बारे में और पूंजीवाद एवं माल और सेवाओं के आदान-प्रदान (commodified exchange) के बारे में लिखा गया था क्योंकि आज की शिक्षा में होने वाले कई महत्त्वपूर्ण बदलाव इनसे जुड़े हैं। इस लेख में मैं एक और प्रक्रिया को प्रस्तुत करना चाहता हूं, जिसने शिक्षा के हर स्तर पर प्रभाव डाला है। यह है औपचारिक संगठनों का विकास- उनके लाभ, उनकी समझ में आने वाली कठिनाइयां और उन कठिनाइयों से उभरने के प्रयास।

एक औपचारिक संगठनात्मक ढांचा करोड़ों लोगों को समान रूप से शिक्षित करना संभव बनाता है। वह हमें बड़े स्कूलों को बनाने की अनुमति देता है और विभिन्न स्कूलों के बीच समन्वय की भी। हालांकि साथ ही वह मुझे उबाऊ दैनिक रुटीन की शिकायत करने को उकसाता है जो मेरी आत्मा को रौंदता है और मुझे बाध्य करता है कि मैं समय-सारिणी में बंधे विषयों को ही लेकर उत्साहित होऊं- 8:40 से 9:20 तक गणित, 9:20 से इतिहास, 10:00 बजे से भौतिक शास्त्र। मैं फिर यह सोचने पर विवश हो जाता हूं कि मेरे जीवन में कुछ भी सच्चा है भी या नहीं? ये हमारी आज की शिक्षा के कुछ केंद्रीय सवाल हैं।

औपचारिक संगठन

औपचारिक संगठन वह है जिसमें नियम, संस्कृति और ढांचा हो, जिसे सचेत रूप से स्थापित किया जाए और तब उसे सचेतन रूप से ही कायम व नियमित भी किया जाए। परिवार एक औपचारिक संगठन नहीं है। हालांकि, परिवार के भी अपने कहे और अनकहे नियम होते हैं, पर वे क्रमशः पीढ़ियों व शताब्दियों के दौरान समय की ठोकरों व सीखों से विकसित होते हैं। परंपरा व संस्कृति उन मानकों के स्रोत होते हैं, जिन्हें

परिवार अगली पीढ़ी को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष तरीके से सिखाने की चेष्टा करता है। एक औपचारिक संगठन अपने लक्ष्यों और अपने उन सामाजिक नियमों के बारे में अधिक स्पष्ट होता है, जिनके माध्यम से वह उन लक्ष्यों को हासिल करना चाहता है। हालांकि, गुरुकुल संभवतः परिवार के ढांचे पर आधारित थे, समसामयिक शैक्षणिक संस्थाएं औपचारिक संगठन हैं। यह पूछना प्रासंगिक होगा कि अन्य औपचारिक ढांचों की तुलना में उनके अगर कोई लाभ हैं, तो वे क्या हैं? उनकी सफलता और उनकी सर्व-व्यापकता को समझने की जरूरत है।

जर्मन विद्वान मैक्स वेबर (1864-1920) ने औपचारिक संगठनों की विशेषताओं को बखूबी परिभाषित किया था। उन्होंने ऐसे संगठनों को अफसरशाही (ब्यूरोक्रैसीस) कहा था। ऐसी 'ब्यूरोक्रैसीस' केवल सरकार में ही नहीं देखी जा सकती थीं बल्कि निजी कंपनियों व अस्पतालों, स्कूलों और विश्वविद्यालय जैसी संस्थाओं में भी नजर आती थीं। वेबर का मानना था कि औपचारिक संगठन या ब्यूरोक्रैसीस इस कारण उभरी क्योंकि वे बड़े स्तर की व जटिल गतिविधियों से अधिक कारगर रूप से निपट सकती थीं। खासकर, उन परिस्थितियों में जब उन गतिविधियों को बार-बार दोहराना पड़ता हो। परिवार का मॉडल किसी ऐसे स्कूल के लिए सही हो सकता था जिसमें मात्र 30-40 विद्यार्थी हों, जैसे गुरुकुल में। अगर 500 विद्यार्थी हों या 7000 तक, जैसे मौजूदा वक्त के अनेक स्कूल में हो सकते हैं, तो इतने सारे विद्यार्थियों को एक परिवार की तरह सिखाना और प्रबंधित करना असंभव है। औपचारिक संगठन भिन्न तरह से काम करते थे और उनकी निम्नलिखित विशेषताएं थीं:

1. काम को छोटी इकाइयों में बांटनाः परिवार या गुरुकुल विभिन्न उम्र के 10-15 विद्यार्थियों को साथ रखकर उन सबको पढ़ा सकते थे। 500 विद्यार्थियों को साथ-साथ पढ़ाना कठिन था। सो, उन्हें विभिन्न आयु समूहों में या ज्ञान के भिन्न-भिन्न स्तरों के अनुसार बांट दिया गया ताकि उन्हें पढ़ाना आसान हो। इससे स्कूल विभिन्न कक्षाओं में बंट गए। जो पढ़ाया जाना था उसे विभिन्न विषयों में बांट दिया गया, जिन्हें पृथक-पृथक शिक्षक पढ़ा सकते हों। इससे प्रत्येक शिक्षक के लिए काम आसान हुआ क्योंकि अब उनके लिए सभी विषयों को जानना जरूरी नहीं रहा और वे एक या दो विषयों के विशेषज्ञ बन सकते थे।

2. एक व्यवस्था निर्मित करनाः उपरोक्त का मतलब यह था कि किसी को बैठकर काम को एक व्यवस्था के रूप में देखना जरूरी था। घटनाओं की शृंखलाएं बनाना जरूरी था जो एक-दूसरे से जुड़ी हों। किसी को यह सोचना था कि बच्चों ने कक्षा 1 में क्या सीखा, फिर कक्षा 2 में क्या सीखा और यों ही आगे तक। यह भी सुनिश्चित करना था कि पाठ्यचर्या परस्पर-संबद्ध हो। एक छोटे स्कूल में यह जरूरी नहीं था क्योंकि वहां एक-दो शिक्षक ही सब कुछ पढ़ाते थे और स्वयं यह भी तय कर पाते थे कि किसके बाद क्या पढ़ाया जाए? बड़े स्कूलों में इस पर सचेतन रूप से सोचना और लगातार उसे जांचते रहने और कायम रखने की आवश्यकता थी।

3. स्पष्ट नियमः एक परिवार में या लोगों के छोटे समूह में एक-दूसरे के साथ कैसे काम करते हैं, यह सिखाने के लिए अनुभव ही पर्याप्त था। हालांकि, अगर कोई शिक्षक दस कक्षाओं वाले स्कूल से जुड़ता और उसकी व्यवस्था से अपरिचित होता और तब कक्षा 5 में वह सब पढ़ाने की कोशिश करता जो उसे रोचक लगता हो, तो जल्दी ही कक्षा 6 और शायद कक्षा 4 के भी शिक्षकों और विद्यार्थियों की ओर से शिकायतें आने लगतीं। काम के सुचारु रूप से चलने के लिए यह आवश्यक था कि यह स्पष्ट कर दिया जाए कि कक्षा 4 में क्या पढ़ाया जाएगा, कक्षा 5 में क्या और कक्षा 6 में क्या? किसी भी जटिल समाज को चलाने के लिए नियम बेहद महत्त्वपूर्ण होते हैं। यह भी जरूरी होता है कि सभी संबंधित लोगों को वे मालूम हों। उदाहरण के लिए, कोई शिक्षिका स्वयं यह नहीं कह सकती थी कि कक्षा 1 में बारहखड़ी सिखाना अनावश्यक है। कक्षा 2 में जो पढ़ाया जाना था, वह इस बात पर निर्भर करता था कि पिछले साल क्या पढ़ाया गया था और इस संबंध में एक नियम भी था कि ऐसा ही करना होगा। ऐसे औपचारिक नियम कष्टदायी थे पर एक बड़े स्तर के जटिल संगठन को चलाने के लिए जरूरी भी थे। उन्हें इच्छानुसार आसानी से बदला नहीं जा सकता था और वे बड़ी संख्याओं में समन्वय व सहकार की अनुमति देते थे।

4. साक्षरताः नियमों को लिपिबद्ध करना उन लोगों के लिए अंजाना था जिन्हें छोटे संगठनों में रहने का अभ्यास था। वहां हरेक को मालूम था कि क्या किया जाना है और क्या नहीं, और अगर कोई यह न जानता तो उसे आसानी से बताया भी जा सकता था। साथ ही, जब कभी समस्या उठती तो जो किया जा रहा होता उसे बदलना भी आसान था। इससे जल्द ही तब समस्याएं पेश आने लगीं जब संगठन अपने आकार में एक दहलीज को पार कर लेता। उदाहरण के लिए, जब मैं सभी विद्यार्थियों को अकेला ही पढ़ाता हूं तो मुझे क्या-क्या बताना है इसका एक मानसिक मानचित्र बना लेने के बाद किसी समय-सारिणी को लिख लेने की दरकार नहीं पड़ती। हालांकि, अगर मैं किसी ऐसे स्कूल में हर दिन 4 पीरियड़ पढ़ाऊं, जिसमें 10-12 शिक्षक हों तो बेहतर यही होगा कि मैं अपने पीरियड़ को एक समय-सारिणी के रूप में लिख कर ऐसी जगह चिपका दूं जहां सब उसे देख सकें। अन्यथा संभव है कि मैं गलत समय पर दूसरों की कक्षाओं में पहुंच जाऊं। एक अर्थ में साक्षरता ने भी टकराव के समाधान में मदद की। अगर मैं और मेरा मित्र इस बात पर स्पष्ट न हों कि 10.30 बजे किसकी कक्षा है तो हम जाकर लिखित समय-सारिणी को देख सकते थे। लेखन ने नियमों और उन्हें बनाने वालों को भारी ताकत दी।

5. पद-सोपान (हायरार्की): शक्ति सभी संगठनों में मौजूद होती है, चाहे वह परिवार हो, गुरुकुल हो या आधुनिक स्कूल। शक्ति संभवतः सभी प्रकार के सामाजिक जीवन का आवश्यक पक्ष है। इसीलिए, क्योंकि हम उस दिशा को नियंत्रित करना चाहते हैं जिसमें हम काम करें और दूसरी दिशा के खिंचावों का विरोध भी करना चाहते हैं। ऐसा कर पाने के लिए हममें अपनी शक्ति के उपयोग की क्षमता होनी चाहिए। बिना शक्ति के कोई संगठन शायद संभव ही नहीं है। हो सकता है कि छोटे समूहों में शक्ति इस प्रकार फैली-पसरी हो कि वह स्पष्टतः परिभाषित ही न हो। परन्तु औपचारिक संगठनों में एक स्पष्ट पद-सोपान मौजूद होता है और शक्ति की दिशा भी काफी कुछ स्पष्ट कर दी गई होती है। एक ठेठ औपचारिक संगठन में शक्ति शीर्ष पर केंद्रित होती है और सभी को उसका अनुसरण करना पड़ता है। भूमिकाओं का स्पष्ट विभाजन होता है जिसमें यह भी शामिल होता है कि कौन किसके प्रति जवाबदेह है? अतः, औपचारिक रूप से संगठित स्कूल में शिक्षक प्राचार्य के प्रति जवाबदेह होते हैं, जो स्वयं स्कूल के न्यासियों (ट्रस्टीज़) के प्रति या खण्ड शिक्षा अधिकारी के प्रति जवाबदेह हो सकता है। जो सबसे नीचे हैं उन्हें शीर्ष की मंशा का उपकरण मात्र माना जाता है। निचले स्तर का शीर्ष द्वारा नियंत्रण बेहद महत्त्वपूर्ण है क्योंकि केवल तब ही संगठन उस दिशा में बढ़ सकता है जिस दिशा में शीर्ष उसे ले जाना चाहता है। अगर नीचे का स्तर मनचाही दिशा में बढ़े तो संगठन के लक्ष्य ही गुम हो सकते हैं। पद-सोपान और शक्ति का केंद्रीकरण ही औपचारिक संगठन को एक कारगर निकाय बनाते हैं और इसी कारण वह इतना प्रचलित भी हुआ है।

6. रुटीनीकरणः किसी औपचारिक संगठन की विविध गतिविधियों का विश्लेषण किया जाता है और तब उसे इस प्रकार विभाजित कर दिया जाता है कि उन्हें रुटीन तरीके से किया जा सके। सो एक दैनिक समय-सारिणी बनाई जाती है, साल भर की एक योजना बनाई जाती है आदि-आदि। इस तरह शिक्षक और विद्यार्थी बिना गहन आत्म-मंथन या दबाव के यह जान पाते हैं कि उन्हें क्या करना है? इससे चीजें सुचारु रूप से चलती हैं और आगामी वर्ष की परेशानियों से भी बचा जाता है क्योंकि एक योजना पहले से ही उपलब्ध होती है। रुटीनीकरण भावनात्मक और बौद्धिक प्रयास को भी कम करता है और चीजों को गति भी देता है। शिक्षक तथा प्राचार्य एक रुटीन बना सकते हैं, जैसे हर सप्ताह शनिवार को एक बैठक का आयोजन, जो विभिन्न मुद्दों पर चर्चा का नियमित अवसर उपलबध करवाती हो। ऐसे में अलग से एक विशेष बैठक की जरूरत नहीं होती, जो सबके काम में बाधा डाले।

7. अवैयक्तिकताः 'रुटीनीकरण से जुड़ी बात है चीजों को भावहीन और तटस्थ रूप से करना। अपने काम को लेकर उत्तेजित न होना या हतोत्साहित न होना, उसको काफी हद तक कर डालना आसान बनाता है। अगर उत्तर-पुस्तिकाओं को जांचते समय मैं कभी बेहद प्रसन्न होऊं या कभी बेहद दुखी, तो मैं बड़ी धीमी रफ्तार से काम कर सकूंगा। मुझे कई बार काम को रोकना होगा ताकि मैं अपना संतुलन वापस पा सकूं। अगर मैं उसे एक रुटीन तकनीकी गतिविधि के रूप में देखूं तो मैं फटाफट उत्तर-पुस्तिकाओं को जांच लूंगा। तटस्थता औपचारिक संगठनों को कुछ अन्य

लाभ भी देती है। जैसे, किसी संगठन के विभिन्न पदों और भूमिकाओं को किसी खास व्यक्ति से जोड़ने की अनुमति नहीं होती। उदाहरण के बतौर, सरकारी शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक का एक पद स्वीकृत होता है। उस पद पर लोग आते-जाते रहते हैं, पर पद बना रहता है। प्राचार्य के पास निश्चित दिशानिर्देश होते हैं जो शिक्षक के पद से जुड़े होते हैं, उस व्यक्ति से नहीं जो अब जा चुका है। पुराने शिक्षक की कक्षा में नया शिक्षक भेजा जाता है और व्यवस्था यथावत् चलती जाती है। यह तटस्थतता स्कूल को कई पीढ़ियों तक चलते जाने की अनुमति देती है और किसी एक व्यक्ति के चले जाने पर व्यवस्था को ढेर नहीं होने देती। यह परिवारों को चलाने के अति-वैयक्तिक तरीकों के विपरीत है, जहां सदस्यों के चले जाने से भीषण संकट उत्पन्न हो सकता है।

औपचारिक संगठनों की समस्याएं

मानव इतिहास में औपचारिक संगठन बेहद लाभदायक रहे हैं। औद्योगिक क्रांति औपचारिक संगठनों के विकास के साथ ही आ सकी थी। उनकी वजह से ही अधिक कुशलता व बेहतर गुणवत्ता नियंत्रण भी संभव हुआ। वे दुनिया भर के स्कूलों का बुनियादी ढांचा भी बने, जिससे स्कूलों के आकार में वृद्धि हो सकी और स्कूलों को संभागीय व राष्ट्रीय स्कूली व्यवस्था में समेकित किया जा सका। उदाहरण के लिए, स्कूली शिक्षण समाप्त करने का प्रमाण पत्र विकसित होने से किसी व्यक्ति के लिए यह आसान हो गया कि वह सैकड़ों किलोमीटर दूर जा प्रमाण पत्र दिखाकर किसी दूसरी संस्था में दाखिला पा सके।

मानव समाज में, खासतौर से स्कूलों में, औपचारिक संगठनों पर खूब चर्चा होती रही है। विद्यार्थियों व शिक्षकों की कई पीढ़ियां नियमों के ऐसे शिकंजे की गिरफ्त में रहे हैं जो उनकी भावनाओं व स्वाभाविक प्रवृत्तियों को कुचल डालते हैं। उदाहरण के लिए, स्कूल दिवस का आठ कालांशों में विभाजन और प्रत्येक कालांश में अलग-अलग विषयों की योजना। संभव है कि इसके कई लाभ हों, जैसे सभी विषयों को पढ़ाना सुनिश्चित करना और विद्यार्थियों को दिन भर एक ही विषय से थका न देना। परन्तु ऐसे भी दिन होते हैं जब कक्षा बढ़िया तरीके से बढ़ रही हो और उस खास विषय को लेकर विद्यार्थियों में खूब उत्साह जग चुका हो। तब अचानक घंटी बजती है और आपको वह छोड़कर रसायनशास्त्र पढ़ना पड़ता है। ऐसी स्थिति में आप यह सोचने पर बाध्य होते हैं कि औपचारिक संगठन अच्छी शिक्षा में सहायक हैं या बाधक।

औपचारिक शिक्षा में कई प्रकार की समस्याएं चिह्नित की गई हैं। उनमें से एक यह है कि जहां औपचारिक संगठन प्रभावी हैं, वहां विद्यार्थी और शिक्षक मूलतः व्यवस्था जो उम्मीद करती है बस उस ही का अनुसरण करना सीख लेते हैं। किसी कारगर औपचारिक संगठन में रोजमर्रा के काम पर कड़ा नियंत्रण होता है। जो व्यवस्था का विरोध करते हैं, चाहे वे सही ही क्यों न हों, वे खुद को एक सशक्त विपक्षी के समक्ष पाते हैं। औपचारिक संगठन से लड़ना और उसे बदलना चुनौतीपूर्ण काम है। इससे कहीं आसान है कि व्यक्ति हथियार डालकर वह करता चले जिसकी उम्मीद की जा रही है। औपचारिक संगठन विनम्र, आज्ञाकारी और सवाल न उठाने वाले लोगों को पसंद करते हैं। इससे स्कूल, शिक्षकों व विद्यार्थियों, दोनों में ही जिस प्रकार के व्यक्तित्वों का निर्माण हो रहा होता है, वह प्रभावित होता है।

ऐसे संगठनों में स्वतः स्फूर्त होना बेहद कठिन है। सब कुछ इस कदर ढांचों में बंधा होता है कि निजी प्रवृत्तियों व रुचियों का अनुसरण कठिन बन जाता है। इससे व्यक्ति में दूसरे जो कर रहे हों और जो कहा जा रहा हो उसी का अनुसरण करने की प्रवृत्ति पैदा होती है। यह ऐसे रचनात्मक व सक्रिय चिंतकों को गढ़ने की आवश्यकता से विपरीत है जो इस जगत की बुनियादी मान्यताओं को जांचें और उन पर सवाल उठाएं।

विश्व का तार्किकीकरण (rationalization)

औपचारिक संगठनों के मूल सिद्धान्तकार, मैक्स वेबर का उनकी बुनियादी समस्या का अपना ही विश्लेषण था। उनका कहना था कि हम अपने जीवन में दरअसल अनेक प्रकार के कारणों से चीजें करने को आकर्षित होते हैं। उदाहरण

के बतौर, हम कुछ काम तकनीकी और उपकरणवादी कारणों से करते हैं। यहां हमारे समक्ष एक तात्कालिक लक्ष्य होता है और हम उसे हासिल करने के लिए सबसे आसान तरीका तलाश लेते हैं। इसी तर्क के सहारे हम वह उपाय तलाशते हैं कि स्कूल में सभी विषयों को कैसे पढ़ाया जाए और पाते हैं कि ऐसा करने का सबसे प्रभावी तरीका है एक समय-सारिणी बनाना और सभी विषयों के लिए समय को बराबर विभाजित कर देना। हालांकि, समस्या यह है कि हम केवल तकनीकी समस्याओं के लिए नहीं जीते, चीजों को करने की हमारी अपनी एक लय-ताल होती है। साथ ही हम कभी-कभी किसी बात से प्रेरित और उत्साहित भी होते हैं। कभी हमारे ऐसे गहरे मूल्य भी हो सकते हैं जो तात्कालिक रूप से व्यावहारिक न हों, पर हम फिर भी उनके अनुरूप काम करना चाहते हैं। उदाहरण के लिए, ऐसा लग सकता है कि स्वतंत्रता दिवस को मनाना एक पूरे दिन को बरबाद कर देना है जिसका उपयोग गणित और इतिहास पढ़ने-पढ़ाने में किया जा सकता था, पर अपने झण्डे को हवा में फहराते देखना और समवेत स्वरों में राष्ट्रीय गीत गाने का जो आनंद है वह भी हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है। औपचारिक संगठनों के साथ जो कठिनाइयां हैं उसका मर्मस्थल यह है कि वहां हम केवल तात्कालिक लक्ष्यों पर ध्यान केंद्रित करते हैं, ताकि तात्कालिक जरूरतें पूरी की जा सकें। इसे कभी-कभार उपकरणवादी तार्किकता कहा जाता है, और बेशक वह अपने-आपमें कोई बुरी चीज नहीं है। अगर हम इस दुनिया में जीना चाहते हैं तो हमें तमाम चीजें बेहद उपकरणवादी तरीके से करनी ही होती हैं। जैसे, अपने करियर को बनाने के लिए पढ़ाई करना, किसी नदी को पार करने के लिए पुल बनाना, आदि-इत्यादि। पेच दरअसल इस बात में है कि चीजें करने के अन्य कारणों जैसे, भावनात्मक, मूल्य, सौंदर्यबोध तथा जीवन के तमाम अन्य उद्देश्यों और अपने इस उपकरणवादी-स्व के बीच संतुलन कैसे बनाया जाए।

वेबर का मानना था कि औपचारिक संगठनों की रचना इसलिए की गई थी ताकि हम चीजों को बेहतर तरीके से कर पाएं, परन्तु वे धीमे-धीमे 'लोहे का पिंजड़ा' बनते गए हैं, जिसमें हम खुद को कैद पाते हैं। यह समस्या केवल स्कूलों की नहीं है बल्कि स्वयं आधुनिक युग की है। जहां कहीं बड़े स्तर के जटिल समाज पर नजर डालें तो हम उन्हें इस सवाल से जूझते पाएंगे कि ऐसे मानवीय संगठन कैसे बनाए जाएं जो संवेदनशीलता बनाए रखते हुए बड़ी संख्याओं से निपट सकें। कई विद्वान वेबर का अनुसरण कर इसे दुनिया के तार्किकीकरण (rationalization) की समस्या कहते हैं। लगता यह है कि सब कुछ उपकरणवादी और तकनीकी कारणों से पुनर्गठित हो जाता है। इस प्रक्रिया में इंसान अक्सर अपनी इंसानियत के लिए स्थान तलाशने के लिए जूझता प्रतीत होता है।

मिशैल फूको उन लोगों में सबसे विख्यात हैं जिन्होंने आधुनिकता की इन विशेषताओं पर हमला किया था। उन्होंने कहा कि आधुनिक संगठन अब भारी शक्ति पा चुके हैं और हमें तमाम ऐसे तरीकों से नियंत्रित करते हैं जिन्हें हम पहचानते तक नहीं। वह शक्ति हमारे अवचेतन स्व का हिस्सा बन चुकी है और हमें अधीन और विनीत बनाती है।

औपचारिक संगठनों को सुधारना

उत्तर भला क्या हो सकते हैं? कभी तो यह लगता है कि सबसे अच्छा तरीका है जटिल व बड़े स्तर के समाजों को त्यागना और फिर से छोटे समूहों में जीना शुरू कर देना चाहिए। हो सकता है कि कुछ प्रतिबद्ध उत्साही लोग ऐसा करने की कोशिश भी करें, पर दुनिया की शेष आबादी के लिए यह कोई वास्तविक विकल्प नहीं है। करोड़ों लोगों के पास ऐसा कर पाने का न तो स्थान है न ही परिस्थिति। एक और रणनीति जो अपनाई गई है, वह है ऐसे औपचारिक संगठन निर्मित करना जो अपनी समस्याओं के प्रति सचेत हों और सायास अधिक मानवीय हों।

औपचारिक संगठनों के रूप में स्कूलों और विश्वविद्यालयों को एक खास समस्या का सामना करना पड़ता है। इनमें हम एक शिक्षक का ऐसा मॉडल रचते हैं जो 'ब्यूरोक्रैट' या अफसर हो। जो तटस्थ व कुशल तरीके से काम करे, पढ़ाने और विषय ज्ञान की तकनीकी बारीकियों पर ध्यान दे। समस्या यह है कि विद्यार्थी ऐसे शिक्षकों से सबसे अच्छी तरह सीखते हैं जो गहन रूप से मानवीय हों और तटस्थ न हों। विषय को उत्तेजक बनाने की, उसे हमारे सबसे महत्त्वपूर्ण

सरोकारों से जोड़ने की क्षमता ही, विद्यार्थियों को विषय से प्यार करने को प्रेरित करती है। औपचारिक संगठन जिस प्रकार के ठंडे रिश्तों को बढ़ावा देते हैं, यह उसके विपरीत है।

इवान इलिच की स्कूलों की जो आलोचना थी वह मूलतः उनकी तटस्थता व शक्ति के केंद्रीकरण का विरोध ही था। उनके सुझाए समाधानों में एक था शक्ति को सभी लोगों में बांट देना और उसे शीर्ष पर केंद्रित न होने देना। कई अन्य लोगों ने भी संगठनों के स्वरूप को इस प्रकार बदलने की चेष्टा की ताकि बड़े ढांचे के तहत छोटे समूहों को स्थान दिया जा सके। अगर छोटे समूहों के बाहरी समूहों के साथ तालमेल बैठाने के तरीके तलाशे जा सकें तो संभव है कि वे आंतरिक रूप से काम करने के अनौपचारिक तरीके भी पा सकेंगे। साथ ही वे बड़े तथा जटिल संस्थानों का हिस्सा होने के लाभ भी उठा सकेंगे। ऐसी रणनीतियों का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है, कक्षा के आकार को सीमित कर देना। शिक्षकों, प्रबंधन व विद्यार्थियों के बीच मैत्री व व्यक्तिगत रिश्तों की संस्कृति का निर्माण भी ऐसी रणनीतियों का हिस्सा है।

'वैकल्पिक' स्कूल गढ़ने के अधिकांश प्रयास संख्या को कम रखते हैं। वे ऐसे तमाम मानक व नियम बनाते हैं जो व्यक्तिगत संबंधों को कायम रखते हैं। इन मानकों व नियमों में जो बातें शामिल हैं, वे हैं- शिक्षकों का बच्चों के साथ रहना, छोटे समूहों में साप्ताहिक बैठकें करना ताकि स्कूल के मसलों पर चर्चा की जा सके। कक्षा में खूब बातचीत और संवाद करना। हालांकि, छोटे समूहों में यह सब करना संभव नजर आता है, चुनौती यह है कि इन तरीकों को करोड़ों के लिए किस प्रकार अनुकूल बनाया जाए।

व्यापार की दुनिया में और भी बड़े स्तरों पर अधिक मानवीय औपचारिक संगठन रचने की कई कोशिशें हुई हैं। इनमें वे कंपनियां भी शामिल हैं जिन्होंने यह तय किया कि किसी भी कार्यालय में 300 से अधिक लोग न हों। जैसे ही उनका आकार इससे बड़ा होता है, वे उसे दो कार्यालयों में विभाजित कर डालते हैं। निर्णय प्रक्रिया में व्यापक भागीदारी के प्रयास भी हुए हैं ताकि अधिक लोगों को काम के साथ सक्रिय रूप से जोड़ा जा सके। उन्हें यह न लगे कि वे ऊपर से निर्णयों को पाने वाले निष्क्रिय कार्मिक मात्र हैं। जिन्हें रुटीन काम करना है उन्हें लगातार लय को बदलने के अवसर दिए जाते हैं। काम को सायास इस प्रकार ढांचाबद्ध करने की चेष्टा की जाती है ताकि कार्मिकों को पहल करने और रचनात्मक होने का अधिक स्थान मिले।

औपचारिक संगठनों और हमारी दुनिया का तार्किकरण उन चुनौतियों के केन्द्र में हैं जिनका सामना आज स्कूल कर रहे हैं। शिक्षकों और विद्यार्थियों की कई समस्याएं दरअसल स्कूलों के औपचारिक चरित्र से ही निकलती हैं। हमारी स्वतःस्फूर्तता व मानवीयता को बनाए रखने के साथ ही बड़े स्तर के जटिल सामाजिक व्यवस्था का हिस्सा होने के लाभ उपलब्ध करवाने के उपाय तलाशना ही प्रमुख प्रश्नों में एक है, जिसका उत्तर स्कूलों व सभी अन्य संगठनों को तलाशना है। ◆

भाषान्तर : पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा